Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-1, Jan – June 2023

हिन्दी ग़ज़लों में संवेदना

प्रो० अशोक सिंह
कुलपति
संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, सरगुजा (छ.ग.)
डॉ० विनय कुमार शुक्ल
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू

किसी भी वस्तु, भाव या स्थिति का हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है और उसकी जो प्रतिक्रिया होती है उसे संवेदना कहते हैं। इसी बात को अन्य तरीके से भी समझा जा सकता है। हमारे आस-पास एक वृहद संसार है। इस संसार में अनगिनत वस्तुएँ, जीव-जन्तु तथा पेड़-पौधे हैं। ये सब किसी न किसी रूप में हमारे ऊपर असर डालते हैं। इस असर के प्रतिफल में कोई न कोई प्रतिक्रिया जरूर होती है। इसी प्रतिक्रिया के समानान्तर हमारे मन में जो भाव पैदा होता है उसे संवेदना कहते हैं। इसके उदाहरण के तौर पर हम आदि कवि वाल्मीकि की कथा का वर्णन कर सकते हैं। एक कवि दुनिया का सबसे संवेदनशील प्राणी होता है। दुनिया की हर चीज कवि के ऊपर कुछ न कुछ असर छोड़ती है। जिसके प्रतिफल में कवि के अन्दर की संवेदना कविता के रूप में बाहर आती है। कवि अपनी संवेदना विभिन्न रूपों में व्यक्त करता है। बड़े कवि की संवेदना भी बड़ी होती है। नागार्जुन अपनी एक कविता में अपनी संवेदना कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं-

"आबद्ध हूँ जी हाँ आबद्ध हूँ
स्वजन परिजन के प्यार की डोर से
प्रियजन के पलकों की कोर में
तीसरी चौथी पीढ़ियों के दन्तरित शिशु-सुलभ हास में"

संवेदना का कोई एक पक्ष नहीं होता। जीवन का प्रत्येक पक्ष अपनी-अपनी तरह से व्यक्ति या रचनाकार को संवेदित करता है।

स्त्री जाति के प्रति अपनी गहरी आस्था रखने वाला समाज में बढ़ती नग्नता को बर्दाश्त नहीं कर पाता-

"टी.वी. से अख़बार तक
गर सैक्स की बौछार हो,
फिर बताओ कैसे अपनी
सोच का विस्तार हो"[1]

मजदूरों के प्रति शायर की आस्था कैसे निःसृत होती है-

"सभ्यता ने मौत से

Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-1, Jan – June 2023

डरकर उठाए हैं कदम,
ताज की कारीगरी
या चीन की दीवार हो"[2]
"एक सपना है जिसे,
साकार करना है तुम्हें,
झोपड़ी से राजपथ का
रास्ता हमवार हो।"[3]

समाज में बढ़ती अपसंस्कृति शायर को परेशान करती है। समाज में बढ़ती अश्लीलता, नग्नता या यूँ कहें कि पाश्चात्य का प्रभाव कवि को अन्दर-ही-अन्दर कचोटता है। कवि कहता है कि मात्र जिस्म ही नहीं आत्मा तक नग्न हो चुकी है। कवि बड़ी ही व्यंग्यात्मक टिप्पणी करता है-

जिस्म क्या है रूह तक सब कुछ खुलासा देखिए,
आप भी इस भीड़ में घुसकर तमाशा देखिए।
जो बदल सकती है इस दुनिया के मौसम का मिज़ाज
उस युवा पीढ़ी के चेहरे की हताशा देखिए।
जल रहा है देश ये बहला रही है कौम को,
किस तरह अश्लील है संसद की भाषा देखिए।
मत्स्यगन्धा फिर कोई होगी किसी ऋषि का शिकार
दूर तक फैला हुआ गहरा कुहासा देखिए।[4]

इस सिलसिले में कवि ने रजनीश को भी नहीं छोड़ता, जिनका उपदेश मात्र नैतिक पतन की ओर घसीटता है। कवि दुत्कारते हुए कहता है, अरे! कम-से-कम लम्बी दाढ़ी का ख़याल करते। स्त्रियों के अन्तर-वस्त्रों पर जिसकी दृष्टि टिकी है, वह चेतना की बात करता है समाज के कल्याण की बात करता है, कैसी विडम्बना है! रजनीश की सूरत कवि को इब्लीश की सूरत लगती है। ऐसे फलसफे से क्या फायदा जो रुह तक को नग्न कर दे। कवि इक तफ्तीश चाहता है। क्या ये आश्चय की बातनहीं कि दोशीजा कन्याओं के जिस्म में देववाणी की तलाश की जा रही है। बालिकाओं के सौन्दर्य से जिसकी दृष्टि हटती ही नहीं वह दर्शन की बात करता है। ये बातें कवि की संवेदना को आहत करती हैं। बड़े-बुजुर्ग, जिन्हें पथ प्रदर्शक होना चाहिए, वो कुकर्मों पर उतर आये हैं। एक उदाहरण-

दोस्तों अब और क्या तौहीन होगी रीश की,
ब्रेसरी के हुक पे ठहरी चेतना रजनीश की।
योग की पेचीदगी का हल मिले या न मिले,
आप सब सूरत से वाकिफ़ हो गए इब्लीस की।
मोहतरम यूँ पाँव लटकाए हुए हैं कब्र में,

चाहिए लड़की कोई सोलह कोई उन्नीस की।
फलसफें की रोशनी में रूह नंगी हो गई,
क्यों नहीं उठती है अब कोई नज़र तफ़्तीश की।
जिस्म की घाटी में अब इल्हाम ढूढ़ा जा रहा,
ये घिनौनी लत है कोरे गाँव के जगदीश की।

किसी भी व्यक्ति, रचनाकार कवि या कलाकार को सबसे अधिक संवेदित प्रकृति ही करती है। प्रकृति से अधिक खूबसूरत कुछ नहीं है। सम्भवतः एक बच्चा भी सबसे पहले चन्दा मामा या धरती माता से ही परिचत होता है। छायावादी कवियों की संवेदना सबसे अधिक प्रकृति के साथ ही जुड़ती है। कुद उदाहरण देखें-

अस्ताचल में युवती संध्या खुली अलक घुँघराली है,
लो माणिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है।
भर ली पहाड़ियों ने अपनी झोली की रत्नमयी प्याली,
झुक चली चूमने बल्लरियों से लिपटी तरु की डाली-डाली।[5]
तड़प रही है कहीं कोकिला कहीं पपीहा पुकारता है,
यही विरुद क्या तुम्हें सुहाता कि नील नीरद सदय नहीं है।[6]
पड़े थे नींद में उनको प्रभाकर ने जगाया है,
किरण ने खोल दी आँखे गले फिर-फिर लगाया है।[7]

उपर्युक्त शेरों में से प्रथम दो शेरों में कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। तथा बाद के दो शेरों में कवि ने एक पूरा मंजरनामा प्रस्तुत किया है। प्रकृति के प्रति कवि की ये संवेदना एक चित्र प्रस्तुत करती है। हिन्दी ग़ज़ल का एक बहुत बड़ा भाग प्रकृति से प्रभावित है। हिन्दी ग़ज़ल की प्रकृति के प्रति ये संवेदना हिन्दी कविता से आई है। प्रकृति के अनगिनत रूपों के चित्र यत्र-तत्र बिखरे हैं।

कवि के लिए जीवन का प्रत्येक पक्ष आदरणीय है। कवि दैनन्दिन जीवन से भी काफी संवेदित होता है।

"हमें भी टाँगने दो चित्र बैठक में उजालों के,
हमें भी एक पौधा धूप का घर में लगाना है।"[8]

उपयुक्त शेरों में 'धूप', 'पौधा', और 'उजाले' जैसे शब्द भले ही आए हैं मगर इन शेरों में 'बैठक' शब्द जियादा प्रभावी है। 'धूप', 'पौधा' और 'उजाले' जैसे शब्द प्रतीक रूप में आए हैं जिनके माध्यम से कवि आनन्दमय जीवन की कामना करता है। कवि चाहता है कि उसके घर खुशहाली आए।

कवि ज्ञान प्रकाश पाण्डेय ने बड़ी ही तंजिया अंदाज में अपनी रचनाओं में रोजमर्रा की विडम्बनाओं का वर्णन किया है। कुछ उदाहरण-

"मोटा-महीन जो भी मिले मुतमइन हैं हम,

उनमें बला की प्यास वो तो भद्र लोग हैं।"[9]

एक और उदाहरण देखें-

अब न रोटी न दाल थाली में,
देश भर के बवाल थाली में।
कोई उत्तर तो दीजिए साहिब,
चीखते हैं सवाल थाली में।
बारी-बारी से बाढ़ औ' सूखा,
फिर दिखे अबकी साल थाली में।
लाश लटकी भले है महुए से,
उठ रहा है उबाल थाली में।
कुछ बताते हैं ये खबर वाले,
कुछ अलग है हाल थाली में।[10]

पहले शेर के माध्यम से कवि भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता यानी सन्तोष की ओर संकेत करता है। कवि के पास मोटा-महीन जो कुछ भी है उससे अपना घर चला लेना चाहता है। सन्तोष यहाँ अधिक प्रभावी है। बाद की ग़ज़ल में कवि, मनुष्य की सबसे ज्वलन्त समस्या दाल-रोटी की ओर इशारा करता है। दाल-रोटी मनुष्य की प्रथम और अन्तिम जरूरत है। रोटी ही सारी समस्याओं की जड़ है। खाली थालियाँ इसकी सबसे प्रबल साक्षी हैं। थाली गृहस्थ जीवन का प्रतीक भी है। इसका खालीपन भरने में ही सारी समस्या आती है।

अदम गोंडवी की रचनाएँ तो रोजमर्रा की समस्याओं से भरी पड़ी है। भारत की गरीब जनता कवि को सबसे अधिक संवेदित करती है। भूख हमारे दैनिक जीवन की समस्या है। भारत की आधी आबादी भूखे पेट सोती है। एक विधवा रोज समस्याओं से लड़ते हुए आगे बढ़ती है। तभी तो कवि कहता है-

"भूख के अहसास को शेरो-सुखन तक ले चलो"[11]

कुछ और उदाहरण देखें-

"महल से झोपड़ी तक एकदम घुटती उदासी है,
किसी का पेट खाली है किसी की रूह प्यासी है।"[12]

"बेचता यूँ ही नहीं है आदमी ईमान को,
भूख ले जाती है ऐसे मोड़ पर इन्सान को।"[13]

हिन्दी ग़ज़ल का एक बहुत बड़ा अंश राजनीति से प्रभावित है। दुष्यन्त से लेकर आज तक के प्रायः हर कवि ने राजनीति पर अपनी लेखनी चलाई। हिन्दी ग़ज़ल के इस ख़ाके में कई रंग हैं। काफ़ी उठापटक, आपा-धापी, विद्रोह तथा संघर्ष की झलक देखने को मिलती है। हिन्दी के रचनाकारों ने कई छोटी-बड़ी लड़ाईयाँ लड़ीं-

"आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है ज़िन्दगी,
हम गरीबों की नज़र में इक कहर है जिन्दगी।

भुखमरी की धूप में कुम्हला गई अस्मत की बेल,
मौत के लम्हात से भी तल्खतर है ज़िन्दगी।"[14]

ये एक तरह की सियासी साजिश ही तो है कि जिसकी वजह से जहन्नुम हो चुकी जिन्दगी को गुलमुहर की शक्ल में दिखाया जा रहा है। भुखमरी की धूप में स्वाभिमान के वट वृक्ष सूखने लगे हैं। संघर्ष का एक और चित्र देखते हैं-

"ये अमीरों से हमारी फैसलाकुन जंग थी"[15]

सियासी जालसाजी के अनेकानेक मंजरनामें अदम की ग़ज़लों में बिखरे पड़े हैं।

"काजू भुने प्लेट में ह्विस्की गिलास में,
उतरा है रामराज विधायक निवास में।
पक्के समाजवादी हैं तस्कर हो या डकैत,
इतना असर है खादी के उजले लिबास में।
आजादी का ये जश्न मनाएँ तो किस तरह,
जो आ गए फुटपाथ पर घर की तलाश में।
पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें,
संसद बदल गई है यहाँ की नखाश में।
जनता के पास एक ही चारा है बगावत,
यह बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में।"[16]

ये सारी त्रासदी सियासत की देन है। सियासत लूट और भ्रष्टाचार का पर्याय बन चुकी है। जनता, बगावत न करे तो और क्या करे? सियासी विडम्बनाएँ कितने ही तरह से रचनाकार को संवेदित और आन्दोलित करती हैं। इन शेरों को पढ़कर तुलसी बाबा याद आते हैं-

"मंत्री गुरू अरु बैद जौ प्रिय बोलहिं भय आस"

ठीक इसी तरह का बिम्ब अदम के शेरों में उभरकर आ रहा है। चोर-चोर मौसेरे भाई वाली स्थिति है। सारे बेईमान, विधायक निवास पर एकत्रित हुए हैं। चोर और साव में कोई अन्तर नहीं रह गया। जैसे भीषण बाढ़ में नदी, तालाब और वर्षा का जल एक हो गया हो। ऐसा लग रहा है जैसे-

"एक ही सफ़ में खड़े सब हो गए,
न कोई बन्दा रहा न कोई बन्दानवाज़"

दोनों शेरों की समानता में थोड़ा अन्तर जरूर है मगर समानता है। ईमानदार और बेईमान में अन्तर करना कठिन हो गया है। कुछ और शायरों को देखते हैं-

"शक्ति सारी खींच लेगा डर यही प्रतिपक्ष में,
हर तरफ़ बाली कुशासन का यहाँ समकक्ष में।"[17]

"भरम बना है अभी घर में कोई रहता है,
जला के तुमने चिरागों को होशियारी की।"[18]

"इतनी कठिन किसी पे कभी रहगुज़र न हो,
रहबर मिलें तमाम, कोई हमसफर न हो।"[19]

"रावण का ज़ुल्म सह के अदालत में राम की,
सीता खड़ी हुई है गुनाहगार की तरह।"[20]

"कभी मेरठ कभी दिल्ली कभी पंजाब में कर्फ्यू,
भला इससे भी बिगड़ी सूरते हालात क्या होगी।"[21]

"बदलकर शक्ल हर सूरत उसे रावण ही मिलते हैं,
कोई सीता जब लक्षिमण रेखा से बाहर निकलती है।"[22]

"तेरा कानून चलेगा तो चलेगा कितना,
रोकने से कोई तूफान रुकेगा कितना।"[23]

"सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"[24]

"सभी फूलों में जितना खौफ़ है अब
खिजाँ की इतनी तैयारी नहीं है।"[25]

"कसीदे हुक्मरां की शान में पढ़ना नहीं सम्भव
नगीने जात में अल्फाज़ के जड़ना नहीं आता"[26]

तरह-तरह के भुलावे में मस्त रहता है,
हमें वो कैसे निपुणता से ध्वस्त करता है।[27]

ये तमाम शेर किसी न किसी रूप में राजनैतिक संवेदनाओं के ही परिणाम हैं। राजनैतिक विडम्बनाएँ रचनाकारों में प्रतिक्रियाएँ पैदा करती हैं। जैनेन्द्र कहते हैं कि साहित्य वह है जिसमें हित; सत् के साथ रहता है। सत् और हित दोनों को एक साथ रखना एक बहुत बड़ी कला है। जैसे हित्; सत् के साथ जुटता जाता है। विपक्षियों की संख्या और संघर्ष भी तेजी से बढ़ने लगता है। हिन्दी ग़ज़ल के शेर कुछ इसी मिज़ाज के शेर हैं। इन शेरों में अपरिमित संघर्ष भावना तथा जिजीविषा का भाव देखने को मिलता है। इन शेरों में आया सत् कहीं से उठाकर रखा गया सत्य नहीं है, बल्कि अनुभूत सत्य है। कुछ और आगे बढ़कर कहें तो कह सकते हैं कि दर्द के अतल अब्धि से खँगाल कर लाया गया सत्य है। यही

कारण हैं कि ये सत्य-कण धूमिल नहीं हैं, बल्कि चमचमाते हुए सत्य हैं। इनकी अपनी एक मौलिकता है। ये तराशकर शोकेस में नहीं रखे गए हैं। ये धूल-धूसरित सत्य हैं। क्लान्त हैं हाँफ़ रहे हैं। खून निकल रहे हैं इनसे।

हिन्दी ग़ज़लकारों की संवेदना किसानों को लेकर भी कहीं अस्पष्ट नज़र नहीं आती। भारत एक कृषि प्रधान देश है। किसानों की यहाँ महत्वपूर्ण भूमिका है। यही कारण है कि किसान को भी भारत का एक सैनिक माना जाता है। इतना ही नहीं किसान को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी माना जाता है। ये हमारा अन्नदाता है। ऐसा लगता था कि आज के वैश्वीकरण के दौर में इसकी स्थिति में सुधार होगा मगर ऐसा हुआ नहीं। इस बाजारवाद ने इसे हाशिए पर ला दिया। उसे न तो उसकी फसल का उचित दाम मिल रहा है न ही उचित साधन मुहैया हो पा रहा है। आज भी भारतीय किसान प्रकृति का दास है। कभी सूखा तो कभी बाढ़ अब भी बारी-बारी से इसकी परीक्षा ले रहे हैं। इन्हीं तमाम समस्याओं से उकताया किसान कभी महुए के पेड़ पर झूलता हुआ पाया जाता है, तो कभी सल्फास की शरण लेता है। खाद, बिजली, पानी की समस्या अब भी उसका पीछा किए हुए है। कभी बिचौलियों द्वारा तो कभी महाजन द्वारा अब भी उसका शोषण हो रहा है। अच्छे बीज की तलाश में वो अब भी बीज भण्डारों की खाक छान रहा है। सूखे से फट चुकी खेतों की छातियों पर लगान कैक्टस की तरह उगता ही जा रहा है। किसान क्रेडिट चुकाते-चुकाते न जाने कितने हल्कू मजदूरी की कगार पर आ चुके हैं। कुछ उदाहरण देखते हैं-

"नमक रोटी दो टुकड़ा प्याज अमचूर औ' हरी मिरची,
हमारे अन्नदाताओं के दस्तरखान तो देखो।"[28]
पलायन बढ़ रहा दिन-दिन जरा दे ध्यान तो देखो,
मुसलसल मिट रही है गाँव की पहचान तो देखो।
कोई रिक्शा चलाता है कोई ठेला चलाता है,
इधर खाली पड़े चौपाल घर खलिहान तो देखो।
कुपोषित बच्चियाँ पत्नी ऋणों का बोझ ढहता घर,
सियासत के दलालों का जरा ऐलान तो देखो

हैं भूखे शिशु न सर पे छत सियह रातें फटेहाली,
प' घोषित योजनाओं के जरा उन्वान तो देखो।
है बिन ब्याही अभी बिटिया भरी चिन्ता से परबतिया,
सुदृढ़ हालत हो दहकाँ की कोई इम्कान तो देखो।[29]

एक भारतीय किसान की पूरी स्थिति इस ग़ज़ल के माध्यम से आँकी जा सकती है। किसान आज शहर की तरफ पलायन कर रहा है। शहर में जाकर किसान आज रिक्शा चलाने के लिए विवश है। घर में बूढ़ा बाप, रोगग्रस्त पत्नी, फाँके काटते बच्चे, अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश है। कुछ और उदाहरण देखते हैं-

धो रहे हैं खूँ से खूँ के दाग नन्दीग्राम में,
बुझ सकेगी आग से क्या आग नंदीग्राम में।
छिन गया है चैन सकते में है मेहनतकश किसान,
सेज है या कोई विषधर नाग नन्दीग्राम में।
हम ज़मीं को माँ का दर्जा देने वाले लोग हैं,
माँ को कैसे कोई देता त्याग नन्दीग्राम में।[30]

जबरन ज़मीन हस्तान्तरण की समस्या भी किसानों की एक बहुत बड़ी समस्या है।

अब जरा प्रेम की मीठी संवेदना की तरफ चलते हैं। प्रेम एक मीठा एहसास है तथा जीवन का एक सनातन सत्य है। बिना प्रेम के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकता। हिन्दी ग़ज़ल में इश्के हक़ीकत और इश्के-मज़ाजी दोनों तरह की ग़ज़लें देखने को मिलती हैं। आज की तल्खी में हमारा ध्यान स्त्री प्रेम तथा दैहिक प्रेम की तरफ कम जाता है, मगर ऐसा नहीं कि हिन्दी ग़ज़ल में इस तरह की ग़ज़लें नहीं हैं। कुछ उदाहरण देखते हैं-

थोड़ी सी इकरार की बातें,
थोड़ी सी इन्कार की बातें।
आओ बैठो पास हमारे,
कुछ पल कर लें प्यार की बातें।[31]

शायर आज के व्यस्ततम जीवन से प्यार के लिए कुछ क्षण निकालना चाहता है। इन्हीं प्यार की बातों के अभाव में एकल परिवार टूट रहे हैं। कुछ और उदाहरण देखते हैं -

वक्ष में गहरा रहा है व्रण किसी के प्यार का,
हाथ में टूटा हुआ दर्पण किसी के प्यार का।[32]

रहने दो मेरी साँसों में बसा दर्द मेरा 'नूर',
यह अहसास न होगा तो ठहर जायेगी ग़ज़ल।[33]
"चाहे जितना सता लीजिएगा,
सिर्फ़ दिल में बसा लीजिएगा।"[34]
तुम पे हँसती है तुम पे मरती है,
होंठ चुप आँख बात करती है।[35]
"कल शिराओं में जो कह गई चाँदनी,
एक ताजा ग़ज़ल कह गई चाँदनी।"[36]

कुछ अन्य तरह का प्रेम देखते हैं-

दिल के दरवाजे को दीवार बनाकर छोड़ा,
फूल से रिश्ते को तलवार बनाकर छोड़ा।[37]
इश्क मिट्टी से कुछ यक़ीनन है,
पेड़ यूँ ही हरा नहीं होता।[38]
हमारी हर बिवाई एक साखी,
बदन की झुर्रियाँ चौपाइयाँ है।[39]

कुछ और मानवीय संवेदनाओं पर दृष्टि डालते हैं-

शहर की अजनबी गलियों से होकर घर जो आता हूँ,
कभी ख़ुद को कभी आँगन को पाता हूँ मैं बेगाना।[40]

उपर्युक्त शेर में टूटते परिवार की एक त्रासदी साफ नज़र आ रही है। परिवार विखण्डित हो रही हैं तथा आदमी-आदमी से दूर होता जा रहा है। कुछ और आगे बढ़ते हैं-

क्या बतलाएँ इस जीवन में क्या कुछ पाया बाबू जी,
अपने हिस्से में हरदम दुःख ही आया बाबू जी।
तब गुलाम थे औरों के अब अपनों के बँधुआ हैं-
आजादी का सूरज हमको रास न आया बाबू जी।
ये जोरू बीमार थे भूखे बच्चे और ये झुकी कम,
हमने तो जीवनभर खटकर यही कमाया बाबूजी।[41]

मुसलसल ग़ज़ल के इन शेरों को देखिए एक बँधुआ की पीड़ा साफ़ परिलक्षित हो रही है। सच है कि भारतीय मजदूर के तकदीर में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

निराला मित्रता को व्याख्यायित करते हुए कुछ यूँ कहते हैं-

कहाँ कि मित्रता वे हँस के बोले,
न कोई जब कि दिल की गाँठ खोले।[42]

अशोक मिज़ाज साहब सेतु का कार्य करते हुए नज़र आते हैं, मगर कोई न कोई उसे रोज तोड़ देता है।

मैं उस तरफ़ के लिए रोज पुल बनाता हूँ,
कोई धमाका उसे रोज तोड़ देता है।[43]

जरा अम्बर जी को देखते हैं-

बबूल के वनों का पर्यटन है,
यहाँ प्रारब्ध में सबके चुभन है।[44]
अपनी ही परछाइयों से दूर होकर,

क्या मिलेगा चाँद को आकाश खोकर।[45]

ग़म का कारोबार न छूटा,

जीवन भर संसार न छूटा।[46]

अब तक में हमने जो कुछ भी कहा उसमें संवेदना के विभिन्न रूपों की चर्चा है। एक रचनाकार के जीवन में जो कुछ भी घटित होता है, उसका उसके जीवन पर गहरा असर पड़ता है। तमाम घटनाएँ उसके मन-मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ जाती है। उसका मन हर पल झंकृत रहता है। कभी वह आनन्द विभोर हो उठता है तो कभी दर्द से कराह उठता है, कभी आक्रोश से भर जाता है तो कभी हास्य का संचार हो उठता है, अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी ग़ज़ल में संवेदना के अनेकानेक धरातल हैं। इन्हें देखने पढ़ने और समझने की आवश्यकता है। हिन्दी ग़ज़ल के सम्यक विकास और इसकी स्थापना के लिए विश्वविद्यालय को आगे आने की जरूरत है।

सन्दर्भ-

1. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 32
2. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 32
3. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 33
4. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 36
5. ध्रुवस्वामिनी, प्रसाद, पृ० 35
6. अजातशत्रु, प्रसाद, पृ० 130
7. बेला, निराला, पृ० 97
8. रोशनी के ठिकाने, अशोक रावत, पृ० 119
9. आसमानों को खल रहा हूँ, ज्ञान प्रकाश पाण्डेय, पृ० 99
10. आसमानों को खल रहा हूँ, ज्ञान प्रकाश पाण्डेय, पृ० 18
11. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 47
12. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 55
13. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 63
14. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 84
15. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 31
16. समय से मुठभेड़, अदम गोंडवी, पृ० 70
17. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, अशोक रावत, सं० माधव कौशिक, पृ० 35
18. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, अखिलेश तिवारी, सं० माधव कौशिक, पृ० 21
19. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, सुल्तान अहमद, सं० माधव कौशिक, पृ० 224
20. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, राजेश रेड्डी, सं० माधव कौशिक, पृ० 14

21. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, चाँद शेरी, सं॰ माधव कौशिक, पृ॰ 14
22. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, जयकृष्ण राय तुषार, पृ॰ 15
23. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, ज्ञानप्रकाश 'विवेक', पृ॰ 13
24. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, दुष्यन्त कुमार, पृ॰ 13
25. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, हरजीत सिंह, पृ॰ 230
26. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, वशिष्ठ अनूप, पृ॰ 176
27. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, एहतराम इस्लाम, पृ॰ 46
28. आसमानों को खल रहा हूँ, ज्ञान प्रकाश पाण्डेय, पृ॰ 91
29. आसमानों को खेल रहा हूँ, ज्ञान प्रकाश पाण्डेय, पृ॰ 96
30. समकालीन हिन्दी ग़ज़ल संग्रह, सं॰ माधव कौशिक, पृ॰ 146
31. इन्द्रधनुषी हिन्दी ग़ज़लें, अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन', पृ॰ 15
32. इन्द्रधनुषी हिन्दी ग़ज़ले, डॉ॰ अजय प्रसून, पृ॰ 16
33. इन्द्रधनुषी हिन्दी ग़ज़ले, डॉ॰ अजरा नूर, पृ॰ 17
34. इन्द्रधनुषी हिन्दी ग़ज़ले, डॉ॰ अनिल गहलौत, पृ॰ 18
35. इन्द्रधनुषी हिन्दी ग़ज़ले, अनिल वशिष्ठ, पृ॰ 19
36. इन्द्रधनुषी हिन्दी ग़ज़ल, परमानन्द अंजुम, पृ॰ 76
37. आसमान आगे, राजेश रेड्डी, पृ॰ 35
38. सर्द मौसम की खलिस, ज्ञान प्रकाश पाण्डेय, पृ॰
39. ग़ज़ल त्रयोदश, डॉ॰ शिव ओम अम्बर, पृ॰ 17
40. मेरी चुनिन्दा ग़ज़लें, सुल्तान अहमद, पृ॰ 58
41. समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, अखिलेश 'अंजुम', पृ॰ 17
42. हिन्दी की छायावादी ग़ज़ल, डॉ॰ सरदार मुजावर, पृ॰ 73
43. अशोक मिज़ाज की चुनिन्दा ग़ज़लें, पृ॰ कवर पेज।
44. ग़ज़ल त्रयोदश, शिव ओम अम्बर, पृ॰ 23
45. ग़ज़ल त्रयोदश, सोनरूपा विशाल, पृ॰ 84
46. आसमान के आगे, राजेश रेड्डी, पृ॰ 96